उठो हिन्द के किसानों उठो

-अली सरदार जाफरी

उठो हिन्द के बाग़बानो उठो
उठो इंक़िलाबी जवानो उठो
किसानों उठो काम-गारो उठो
नई ज़िंदगी के शरारो उठो
उठो खेलते अपनी ज़ंजीर से
उठो ख़ाक-ए-बंगाल-ओ-कश्मीर से
उठो वादी ओ दश्त ओ कोहसार से
उठो सिंध ओ पंजाब ओ मल्बार से
उठो मालवे और मेवात से
महाराष्ट्र और गुजरात से
अवध के चमन से चहकते उठो
गुलों की तरह से महकते उठो
उठो खुल गया परचम-ए-इंक़लाब
निकलता है जिस तरह से आफ़्ताब
उठो जैसे दरिया में उठती है मौज
उठो जैसे आँधी की बढ़ती है फ़ौज
उठो बर्क़ की तरह हँसते हुए
कड़कते गरजते बरसते हुए
ग़ुलामी की ज़ंजीर को तोड़ दो
ज़माने की रफ़्तार को मोड़ दो

श्रम

आसान नहीं थी ट्रेड यूनियन राजनीति की राह

सतीश कुमार

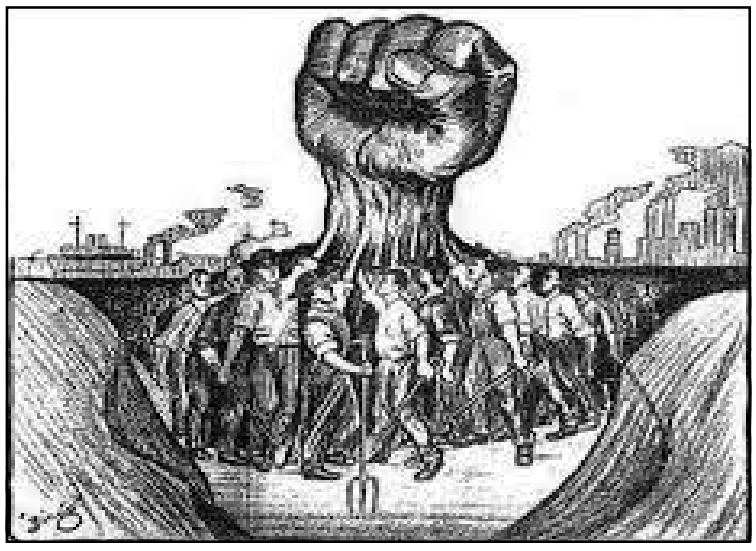

जिन मूल्यों एवं मर्यादाओं को लेकर मैं गुडइयर यूनियन को चलाना चाहता था वह सरल नहीं थी। भांति-भांति के विचारों वाले श्रमिक मेरी कार्यकारिणी के सदस्य थे। कई तो बहुत बढिया एवं सही सोच के थे तो कुछ बहुत ही निकृष्ट सोच वाले भी थे। ऐसे लोगों के लिये यूनियन की नेतागीरी निजी लाभ कमाने का एक बढ़िया अवसर था। रात की शिफ़्टों से बच कर जनरल शिफ़्ट कराना तो कोई खास बात नहीं लेकिन अपनी नेतागिरी की बदौलत अपनी जॉब बदलवाना अथवा श्रमिक काडर से प्रबन्धन काडर में जाने का प्रयास करना जरूर संगठन के लिये खतरे की घंटी होती थी। जब यूनियन वाले प्रबन्धन का अहसान लेकर कोई निजी लाभ उठायेंगे तो जाहिर है वे इसका बदला चुकाने के लिये कहीं न कहीं सामूहिक हितों को नुकसान पहुंचायेंगे।

एक बार तो मैं बहुत हैरान हुआ जब मुझे पता लगा कि मेरा एक साथी घर जाने के लिये कम्पनी से टैक्सी बिल के पैसे इसलिये ले रहा था कि प्रबन्धन से वार्ता करने के चक्कर में उसकी बस छूट गयी थी। पड़ताल करने पर पता लगा कि इस तरह के तो कई बिल वह पहले भी ले चुका था। उसकी ट्रिक यह थी कि वह कोई न कोई कहानी बना कर शाम की शिफ़्ट खत्म होने से पहले प्रबन्धन से वार्ता शुरू करा देता था। जब तक वार्ता समाप्त होती कम्पनी की बसें निकल जाती, ऐसे में वह टैक्सी बिल का हकदार बन जाता। इस ट्रिक को समझने पर मैंने प्रबन्धन से कहा कि टैक्सी की बजाय कम्पनी की गाड़ी इसे छोड़ने जायेगी, क्योंकि मुझे पता लग चुका था कि इसने कहीं जाना नहीं; लिहाजा कम्पनी की गाड़ी मात्र 10-15 मिनट में ही उसे बल्लबगढ तक छोड़ कर आ गयी। उसने वहां भी एक कमरा ले रखा था जहां उसने टैक्सी बिल के पैसों से शराब पीनी होती थी। खैर उसके बाद मैंने वह शाम वाली वार्ता ही बंद कर दी। जाहिर है मेरे इस कदम से वह तथा उसके साथी नाराज़ हो गये। न जाने ऐसी कितनी नाराजगियां मुझे झेलनी पड़ी जबकि बहुत सी बातें तो मेरी पकड़ में ही नहीं आती थी क्योंकि प्रबन्धन भी चाहता था कि वह कुछ नेताओं को पटा कर रखे।

यद्यपि प्रशासनिक पदों पर तैनात मेरे परिजन मुझ से इतने परेशान व दुखी रहते थे कि मैं काफ़ी समय तक उनसे मिलता-जुलता भी नहीं था, इसके बावजूद मेरे श्रमिक साथी मुझसे अपेक्षा करते थे कि मैं सरकारी दफ़्तरों से उनके निजी काम निकलवा दूं। उस वक्त राशन की चीनी व मिट्टी के तेल की बड़ी दिक्कत श्रमिकों को रहती थी। डिपो होल्डर अक्सर उनके राशन को बेच खाते थे। शिकायतें मिलने पर कई डिपो होल्डरों के विरुद्ध कार्यवाही भी कराई लेकिन समस्या का सही हल तभी हो पाया जब मेंने प्रयास करके कम्पनी गेट पर ही राशन डिपो खुलवा दिया जिसका पूरा नियंत्रण श्रमिकों की एक कमेटी के हाथ में था। इसी तरह, बिजली विभाग, स्कूल, थाने, तहसील, अस्पताल आदि हर जगह के मसले मेरे पल्ले पड़ते रहे जिन्हें मुझे हल करना होता था। अधिकतर हो भी जाते थे जिनका कोई शुक्रिया नहीं और जो कोई न हो पाये उसके लिये मलामतें।

इस दौरान भी पुरानी यूनियन व प्रबन्धन तो भ्रम से परेशान थे ही और हर हालत में मुझ से निजात पाना चाहते थे। ऐसे में मेरी कार्यशैली को लेकर मेरे अपने ही अनेक साथी नाराज रहने लगे तो मेरा जनाधार घटना तय था, ऊपर से मेरा फैक्ट्री से बर्खास्त रहना भी मुझ पर भारी पड़ रहा था। लिहाजा एक साल की अवधि पूरी होने पर पुन: अगस्त 1981 में चुनाव हुआ तो मुझे हार का मुंह देखना पड़ा। इस बीच मेरा भी इस यूनियन की नेतागीरी से काफ़ी हद तक मोह भंग हो चुका था। सारा समय यहां बर्बाद करने की अपेक्षा मैंने सीआईटीयू संगठन के साथ जुड़ कर अपेक्षाकृत अधिक शोषित-उत्पीड़ित मज़दूरों के लिये काम करना शुरू किया। वैसे इस संगठन के साथ तो मैं पहले से भी काम कर रहा था, लेकिन गुडईयर से फ़ारिग होकर और अधिक समय उनके लिये काम करने लगा। लेकिन 1980 के दशक के प्रारम्भिक दिनों में सीटू से भी मोह भंग होने लगा क्योंकि वहां जो हाईकमान की तानाशाही थी उसके सामने तर्क-वितर्क की कोई गुंजायश नहीं थी। वहां केवल आदेशों की पालना व क्रियान्व्यन ही करना होता था, जो मेरे गले नहीं उतर पाता था।

परिणामस्वरूप कुछ दिन पूरी तरह निष्क्रिय रहने के बाद हिन्द मज़दूर सभा, जो उन दिनों फ़रीदाबाद में नई-नई गठित होने जा रही थी, से जुड़ गया। यहां फ़िर से पूरी तरह सक्रिय होकर काम किया। अनेकों छोटी-बड़ी फैक्ट्रियों की यूनियनें खड़ी की। उनके संघर्ष चलाये, बड़े पैमाने पर मज़दूरों को जागरूक करके, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति लड़ना सिखाया जिससे उन्हें काफ़ी राहत मिली। लेकिन यहां भी मैं बहुत दिनों तक न टिक सका। वैचारिक मतभेद जब काफ़ी बढ़ने लगे तो धीरे-धीरे अपनी सक्रियता घटा दी।

इस बीच मेरा रुझान पत्रकारिता की ओर बढ़ने लगा। स्थानीय पत्रों में छपने वाली मज़दूर विरोधी खबरों से मन बड़ा खिन्न होता था। मज़दूरों के हर संघर्ष को तोड़ मरोड़ कर मालिकान के हक में पेश किया जाता था।

जाहिर है इस तरह के प्रोपेगंडे से मज़दूरों व हम जैसे कार्यकर्ताओं की बदनामी होती थी, प्रशासन को हमारे खिलाफ़ कुछ कार्यवाही करने में इस तरह का दुष्प्रचार काफ़ी सहायक होता था। लिहाजा मन बनाया कि क्यों न इस दुष्प्रचार का जवाब देने के लिये तथा मज़दूर संघर्षों को आवाज़ देने के लिये 'मज़दूर मोर्चा' के नाम से एक पत्र निकाला जाये, बेशक पाक्षिक ही हो । लिहाजा नवम्बर 1987 में यह सपना साकार हुआ और तभी से यह सुचारु रूप से आमजन व मज़दूर किसान की आवाज़ बुलंद करता आ रहा हूं।

(सम्पादक मज़दूर मोर्चा)

व्यंग्य

मोदी जी ने लिया कोरोना टीका

विष्णु नागर

वैसे कोरोना के नाम पर प्रधानमंत्री का अपना प्रचार-प्रसार युद्ध जारी है,संकट को अवसर में बदलना जारी है मगर इसका टीका जब खुद उन्हें लगाने की बात आई तो वे यह बताते हुए शरमा गए। अब वे यह कैसे कहते कि मितरो,जब 50 से ऊपर के लोगों को टीका लगेगा तो हो सकता है,मैं भी तब टीका लगवा लूँ! उन्हें तो यह कहना पड़ता कि डरो मत, सबसे पहले मैं टीका लगवाऊँगा और बाद में हमारे मंत्री, मुख्यमंत्री सब लगवाएँगे न उन्हें कुछ होगा,न मुझे। यह उन्हें कहना नहीं था,इसलिए यह बात उन्होंने भी नहीं,उनके कार्यालय ने भी नहीं बल्कि उनके कार्यालय के एक सूत्र ने कही! अब सूत्र को सूत्र इसीलिए कहा जाता है कि उसका न नाम होता है,न चेहरा! वह होकर भी नहीं होता। नतीजा यह है कि यह खबर अगर कल अफवाह साबित हो जाए तो इसके लिए न मोदी जी जिम्मेदार होंगे, न उनका कार्यालय। सूत्र भी जिम्मेदार नहीं होगा क्योंकि वह तो, अनेक उलझे सूत्रों में बँधे प्रधानमंत्री कार्यालय का केवल एक सूत्र है। हमारे और आपके बीच तना हुआ एक धागा है जो टूट भी सकता है। यानी टीका लगवाने की संभावना में काफी और संभावनाएँ भी निहित हैं। संभावना का अर्थ भाइयों-बहनों यह भी होता है कि जितनी संभावना है, उतनी ही असंभावना भी है यानी तब भी मोदी जी टीका लगवा ही लेंगे,यह जरूरी भी नहीं।

और संभावनाओं का क्षेत्र तो आपको मालूम है, अनंत होता है।अब जैसे सर्दी में अगले दिन बादल छँटने और सूरज निकलने की संभावना मौसम विभाग व्यक्त करता है मगर मान लो, ऐसा नहीं हुआ तो भी आप न तो आप मौसम का कुछ कर सकते हैं, न मौसम विभाग का! न बादलों का ,न सूरज का! जैसे मोदी जी आए थे तो यह संभावना साथ लेकर आए थे कि 'अच्छे दिन लाएँगे।लाना भूल गए तो भी आपने -हमने मोदी जी का क्या बिगाड़ लिया! उन्होंने नोटबंदी की।संभावना थी कि इससे कालाधन खत्म होगा। नहीं हुआ बल्कि बढ़ गया तो नोटबंदी के फेल होने पर मुझे

चौराहे पर फाँसी पर लटका देना के उनके प्रस्ताव को हमने माना नहीं ,उल्टे हमने उन्हें और बड़ा बहुमत देकर पुरस्कृत कर दिया! संभावना तो यह भी थी कि मोदी जी के यह नारा लगाने के बाद अगली बार ट्रंप सरकार तो अमेरिका में ट्रंप सरकार ही बनेगी मगर बन गई बाइडेन सरकार! संभावना तो यह भी थी कि किसानों को खालिस्तानी, आतंकवादी बताने से,एन आई ए का नोटिस भेजने से वे डर जाएँगे, नहीं डरे।

तीनों कानूनों को डेढ़ साल तक के लिए स्थगित करने के प्रस्ताव से किसान पिघल जाएँगे मगर नहीं पिघले।संभावना शब्द विशेष रूप से अगर मोदी जी के साथ जुड़ा हुआ है तो फिर उसके धोखा खाने की संभावना तय है। तो संभावना के इस चतुर खेल पर हम विश्वास नहीं करते।हम तो इतने अधिक अविश्वासी हैं कि वे जब यह कहते हैं कि हमने यह कर दिखाया है,तो उस पर भी विश्वास नहीं करते!

वैसे मोदी जी के दूसरे चरण में टीका लगवाने की संभावना के रास्ते में काफी बाधाएँ आ सकती हैं।वह यह कहने का अधिकार तो खो चुके हैं कि क्या करूँ तबियत खराब है, शूगर हाई है, अस्पताल में भर्ती हूँ, बाद में टीका लगवा लूँगा,आप सब आज ही लगवा लो! इस संभावना का द्वार उन्होंने अमित शाह के लिए खोल रखा है,अपने लिए नहीं।वह यह भी नहीं कह सकते कि कल अट्ठारह नहीं,बीस घंटे तक काम किया है, इसलिए आज थका हुआ हूँ। फिर किसी दिन लगवा लूँगा। ट्रंप ने बुलाया है,जाना ही पड़ेगा, यह संभावना भी अब नहीं रही।माँ गंगा भी उन्हें दो -दो बार बुला चुकी। हाँ उनकी वास्तविक माँ की याद उन्हें टीका लगवाने के ठीक एक दिन पहले सता सकती है और वह अहमदाबाद जा सकते हैं।

अब इसका दूसरा पहलू भी देखिए। तमाम मंत्री सोचने लगे होंगे कि यार ये चाहेगा तो किसी भी तरह टीका लगवाने से बच लेगा मगर हमारा क्या होगा रे-कालिये।इसने हमें मंत्री पद दे दिया,सांसद-विधायक बना दिया, इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम हमें जबरन टीका ठुँसवा कर हमारी जान भी ले लो!या तुम तो टीके के नाम पर डिस्टिल्ड वाटर का टीका लगवाकर शेर बनते फिरो मगर हम गरीबों को असली टीका लगवा दो!इसलिए सब मंत्री आदि टीका लगवाने से बचने की योजना अभी से बनाने लगे होंगे, हालांकि जिस गति से टीकाकरण चल रहा है, उससे तो लगता है अभी यह खतरा कम से कम छह महीने दूर है पर जिस घर में बिल्ली हो,वहाँ चूहों की खैर जब तक है,तभी तक है!